IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS)
Volume 21, Issue 1, Ver. I (Jan. 2016) PP 66-68
e-ISSN: 2279-0837, p-ISSN: 2279-0845.
www.iosrjournals.org

व्यंग्यकारों के सानिध्य में पनपता व्यंग्य का स्वरूप

डॉ. महेश चन्द्र चौधरी
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग
नारायण कॉलेज, शिकोहाबाद

सारांश
व्यंग्यकार व्यंग्य द्वारा समाज की विकृतियों को सुधारने का कार्य युगों से करता चला आ रहा है। वीरगाथा काल में कायर, भक्तिकाल में पाखण्डी, रीतिकाल में सूम, भारतेन्दु युग में विदेशी शासन, अंग्रेजी भाषा, भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों, अन्धविश्वासों, भारत वासियों की आलस्य परायणता को व्यंग्य का अवलम्ब बनाया गया। इसे सामाजिक सुधार परिवर्तन की संज्ञा दी गयी। कबीर, भारतेन्दु जैसे व्यंग्यकारों का यहीमन्तव्य रहा कि अपने समाज की कुरीतियों, बुराइयों, भ्रश्टाचारों को पूरी तरह समाप्त कर स्वस्थ समाज की संरचना की जाये। जीवन के विकृत पक्षों को अथवा किसी वर्ग विशेश के विसंगत स्वभावों का अवलम्ब बनाकर उन पर तीक्ष्ण प्रहार करते हुए उनमें निहित मार्मिकता को प्रस्तुत करना निश्चित रूप से सामाजिक स्वास्थ्य के लिए बहुत आवश्यक है। व्यंग्य मूलतः समाज के हित में होता है, इसलिए उसकी दृष्टि समग्र रूप से मानवीय कल्याण की कामना से ओत–प्रोत होती है।

परिचय

जहाँ व्यंग्यकार को व्यंग्य के आहत जनों के द्वेश का सामना करना पड़ता है, वहाँ व्यंग्य के इन मारे हुओं के द्वारा सताये हुए अथवा प्रभावित व्यक्ति द्वारा स्नेह, प्रशंसा और सौहार्द की प्राप्ति भी होती है। वास्तव में व्यंग्यकार के साथ समाज का बहुत बड़ा वर्ग होता है, जिनके लिए व्यंग्यकार की लेखनी निरन्तर संघर्ष करती है। यही व्यंग्यकार का सबसे बड़ा सम्बल है। व्यंग्य मानव जीवन के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य करता है, क्योंकि वह मिथ्याचार, अनाचार, भ्रष्टाचार, पाखण्डों, विभिन्न प्रकार की विसंगतियों आदि पर गहरी से गहरी चोट कर उनके समूल उन्मूलन के लिए संघर्ष करता है। दूसरी ओर असंगतियों के शिकार, जनमानस की आकांक्षाओं को नैतिक बल भी प्रदान करता है। आज हमारे समाज में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनेकानेक विसंगतियाँ मुँह बाये खड़ी हैं। उन्हें किसी भी तरह से झुठलाया नहीं जा सकता। इन्होंने एक दूशित समाज व्यवस्था, भ्रश्ट शासन–तन्त्र, धार्मिक–अतिवादिता का रूप धारण कर समाज के सम्पूर्ण जीवन को पूरी तरह पंगु बना दिया हे। ये विसंगतियाँ सुरसा के मुँह की भाँति तेजी से बढ़ती ही चली जा रही हैं और यही विसंगतियाँ व्यंग्य रचना के लिए सबसे बड़ी उर्वरा शक्ति हैं। जैसे–जैसे जीवन और समाज में विसंगतियों का बोल–बाला होता गया, वैसे–वैसे व्यंग्यकार को व्यंग्य रचना के लिए अधिकाधिक उपजाऊ भूमि प्राप्त होती गयी। क्योंकि व्यंग्य का सीधा सम्बन्ध इन विसंगतियों से है। इन विसंगतियों ने साहित्य की प्रत्येक विधा को व्यंग्यमय बनने के लिए पूरी तरह विवश कर दिया है। जब तक जीवन और समाज में यह विसंगतियाँ मौजूद हैं, तब तक व्यंग्य की उपादेयता को नकारा नहीं जा सकता। अतः व्यंग्य की अपनी एक सामाजिक उपयोगिता है। व्यंग्य एक समाजसापेक्ष और समाजधर्मी विधा है। व्यंग्य का समाजशास्त्र से गहरा और घनिश्ठ सम्बन्ध है।

व्यंग्य की व्युत्पत्ति वि+अंग=व्यंग्य से है।[1] पूर्व समय में व्यंग्य शब्द प्राचीन भारतीय वाङ्मय में अंग्रेजी के सेटायर के पर्याय रूप में प्रचलित नहीं था। परन्तु आधुनिक युग में व्यंग्य को जिस रूप में ग्रहण किया गया है, वह अंग्रेजी के सेटायर के आधार पर किसी व्यक्ति या समाज की बुराई या न्यूनता को सीधे शब्दों में न कहकर, उल्टे या टेढ़े शब्दों में व्यक्त करना ही व्यंग्य है, जो नैतिक, सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों, अन्तर्विरोधों, मिथ्याचारों, असामंजस्यों, अन्यायों, अविचारों आदि को पकड़ता है। इन पर हँसता है, किन्तु वह हँसी प्रसन्नता की नहीं होती, कसक की होती है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने इसे अपनी–अपनी दृष्टि से देखते हुए अपने–अपने मतानुसार इसकी अलग–अलग परिभाषायें प्रस्तुत की हैं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य को उपहास की संज्ञा देते हुए उसे इन शब्दों में परिभाषित किया है– ''व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोश्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर कहने वाले को जबाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बना लेना हो जाता हो।''

डॉ0 प्रेमनारायण दीक्षित ने भी व्यंग्य को उपहास की संज्ञा देते हुए व्यंग्य को सहानुभूति विरोधी भाव के रूप में परिभाशित किया है – ''जिस हास्य में सहानुभूति की मात्रा नहीं होती, वरन् उस हँसी में घृणा आदि सहानुभूति विरोधी भावों की छाया पड़े, उसे उपहास कहते हैं।''[3]

हिन्दी हास्य–व्यंग्य साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर डॉ0 बरसाने लाल चतुर्वेदी ने भी व्यंग्य को इसी अर्थ में स्वीकार किया है – ''आलम्बन के प्रति तिरस्कार, उपेक्षा या भर्त्सना की भावना को लेकर बढ़ने वाला हास्य व्यंग्य कहलाता है।''

थोड़े से शब्दान्तर के साथ डॉ0 कृश्णदेव झारी ने भी ऐसे ही विचार व्यक्त किये हैं – ''हास्य में जब आलम्बन के प्रति सहानुभूति या अनुराग की भावना रहती है तो वह शुद्ध हास्य माना जाता है। जब हास्य में कटुता आ जाती है तो वह व्यंग्य कहलाता है।''

स्पष्ट है कि विचारकों का एक वर्ग व्यंग्य को हास्य के सहकारी के रूप में सहानुभूति विरोधी भाव स्वीकार करता है, परन्तु समय के साथ व्यंग्य के स्वरूप और परिभाषा के सम्बन्ध में चिन्तकों की नवीन धारणायें बनीं। जार्ज मेरेडिथ ने व्यंग्य को परिभाशित करते हुए कहा कि यदि उपहास गोचर हो जाये तथा उसके प्रति सहानुभूति कुण्ठित हो जाये, तो समझना चाहिए कि हम व्यंग्य की पकड़ में आ रहे हैं– "If you detect the redicule and your kindlyness is chilled by it, you are slipping into the grasp of satire."

मेरडिथ ने व्यंग्यकार की तुलना कूड़ा साफ करने वाले जमादार से की है। इस दृष्टि से व्यंग्य का उद्देश्य समाज के किसी विकृत रूप का सुधार परिलक्षित होता है। व्यंग्य के उद्देश्य को लक्षितकर भी व्यंग्य की अनेक परिभाषायें प्रस्तुत की गयी हैं – ''व्यंग्य किसी संस्था, समाज, व्यक्ति अथवा समूह की दुर्बलताओं तथा अवगुणों का उद्घाटन कर उसका आक्षेप करता है।''

श्री गुलाम अहमद फुरक़त ने भी व्यंग्य के उद्देश्य को लक्षित कर व्यंग्य की परिभाषा इन शब्दों में दी है – ''व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य समाज या सोसाइटी की बुराइयों, कमजोरियों और त्रुटियों की हँसी उड़ाकर पेश करना है, मगर इसमें तहज़ीव का दामन मजबूती से पकड़े रहने की जरूरत है।''

स्पष्ट है कि व्यंग्यकार जीवन और जगत् में व्याप्त विसंगतियों और दुर्बलताओं को समाप्त कर सद्भावनाओं की स्थापना का प्रयास करता है। इस दृष्टि से निश्चय ही व्यंग्य सुचारु एवं सुधारक विधा है। व्यंग्य के इसी चरित्र को डॉ0 एम0पी0 खत्री ने स्वीकार करते हुए व्यंग्य को उपहास की संज्ञा देते हुए इन शब्दों में रूपायित किया है– ''जिस प्रकार समाज–सुधारक समाज के दोषों पर अपनी दृष्टि एकाग्र कर उनकी अनैतिकता तथा उनकी अमानुशिकता पर आक्षेप कर उन्हें उच्च स्वर से घृणित प्रमाणित करने लगते हैं, उसी प्रकार उपहास की अपरिमार्जित दृष्टि अवगुणों और दोषों पर गढ़ जाती है और जब तक उन्हें घृणास्पद नहीं सिद्ध कर देती, उसे सन्तोष नहीं होता।''

व्यंग्य की प्रकृति उसे सुधारक ही नहीं, आक्रामक भी सिद्ध करती है। व्यंग्य के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह उपहास अथवा भदेस के चित्रण द्वारा विनोदी भाव अथवा घृणा की भावना उत्पन्न ही हो जाये। व्यंग्यकार की स्थिति निर्मम शल्य चिकित्सक जैसी होती है जो शरीर के फोड़ों को चीखने–चिल्लाने की परवाह किये बिना नश्तर से चीर डालता है। विद्रूपताओं, अनाचारों और विसंगतियों पर किया गया किसी भी प्रकार का साहित्यिक प्रहार व्यंग्य के अन्तर्गत आता है।

व्यंग्य के इसी व्यापक रूप को जौन एम0बुलिट ने इन शब्दों में व्यक्त किया है – ''मानव अथवा उसके आचारों की मूर्खताओं अथवा सदोशता पर किया गया साहित्यिक प्रहार, चाहे वह अच्छा हो या बुरा, सामान्य हो या विशिश्ट, सत्य हो या असत्य, क्रूर हो या हास्यास्पद, गद्यमय हो या पद्यमय, सब व्यंग्य शब्द के अन्तर्गत हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से व्यंग्य विशयक अनेक भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती है। व्यंग्य कभी असत्य, हास्यास्पद और सामान्य नहीं होता। व्यंग्य की आत्मा निरन्तर जीवन की निकटता का अनुभव करती है और विशिश्ट निर्ममता का आवरण व्यंग्यकार की पहचान है। सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई ने व्यंग्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है – ''व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है।''

वस्तुतः व्यंग्य का क्षेत्र बड़ा व्यापक है और जीवन में व्याप्त किसी भी कुरूपता के विरुद्ध इसका प्रयोग हो सकता है। डॉ0 वीरेन्द्र मेंहदीरता ने व्यंग्य को परिभाषित करते हुए लिखा है– ''शास्त्रीय दृष्टि से व्यंग्य मानव तथा जगत् की मूर्खताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में लाकर उसके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक रूप पर आलोचनात्मक प्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है।''

स्पष्ट है कि सम्पूर्ण साहित्यिक आक्रोश को व्यंग्य की संज्ञा दी जा सकती है, इसी बात को स्पष्ट करते हुए पाश्चात्य आलोचकों ने 'इन्साईक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में लिखा है – "Satire in its literary aspect may be defined as the expression in adequate terms of sense of amusement or disgust excited by the ridiculous, provided that human is a distinctly recognised element and that the utterance is invested with literary form. Without humour satire is feeling in invective, without literary form it is feelier."

अर्थात् साहित्यिक दृष्टि से व्यंग्य उपहासास्पद अथवा अनुचित वस्तुओं से उत्पन्न विनोद या घृणा के भाव को समुचित रूप से अभिव्यक्त करने का नाम है, वशर्ते कि उस अभिव्यक्ति में हास का भाव निश्चित रूप से विद्यमान हो तथा उक्ति को साहित्यिक रूप मिला हो। हास्य के अभाव में व्यंग्य गाली का रूप धारण कर लेता है तथा साहित्यिक विशेषता के बिना यह विदूशक की ठिठोली मात्र बनकर रह जाता है। प्रसिद्ध विद्वान् डॉ0 शेरजंग गर्ग ने व्यंग्य की सबसे समीचीन परिभाषा प्रस्तुत की है– ''व्यंग्य एक ऐसी साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना है, जिसमें व्यक्ति तथासमाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, कथनी और करनी के अन्तरों की समीक्षा अथवा निन्दा भाषा की टेड़ी भंगिमा देकर अथवा कभी–कभी पूर्णतः सपाट शब्दों में प्रहार करते हुए की जाती है। यह पूर्णतः अगम्भीर होते हुए गम्भीर हो सकती है, निर्दय होते हुए दयालु हो सकती है, प्रहारात्मक होते हुए तटस्थ लग सकती है, मखौल लगते हुए बौद्धिक हो सकती है, अतिशयोक्ति एवं अतिरंजना का आभास देने के बावजूद पूर्णतः सत्य हो सकती है'' ।

डॉ0 गर्ग द्वारा दी गयी उपर्युक्त परिभाषा व्यंग्य की समीचीन परिभाषा कही जा सकती है, परन्तु व्यंग्य केवल एक ही साहित्यिक अभिव्यक्ति या रचना ही नहीं है, अपितु वह सामाजिक अन्तर्विरोधों के बीच साहित्यकार के आक्रोश से जन्म लेता है। आलोचना या निन्दा करने की अपेक्षा व्यंग्य का उद्देश्य शोधन द्वारा सुधार करना होता है।

व्यंग्याभिव्यक्ति प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं है। अनेक मनोवैज्ञानिकों ने व्यंग्याभिव्यक्ति के पीछे एक मौलिक क्रान्तदर्शी व्यक्तित्व का बल स्वीकार किया है, जो जीवन के विभिन्न अनुभवों का अधिकाधिक निकटता से अनुभव करता है। जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही गहरी निष्ठा होती है, जितने दूसरे लोगों की होती है, बल्कि सामान्य से ज्यादा होती है। वर्तमान पीढ़ी के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के शब्दों में– ''सृजन के स्तर पर अनुभव को विभिन्न रूप मिलते हैं, जिनमें एक व्यंग्य भी है। जीवन के अन्तर्विरोधों, असामंजस्य, अतिरेक, मिथ्याचार, अविवेक आदि को व्यंग्यकार उभारकर सामने रखता है।'

सन्दर्भ सूची

1. गर्ग, शेरजंग : स्वातंन्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ0 75
2. वर्मा, भगवतीचरण : साहित्य की मान्यताएँ, पृ0 114
3. गर्ग, शेरजंग : स्वातन्र्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ0 75
4. नागरी पत्रिका; बेढव स्मृति अंक, पृ0 56
5. गर्ग, शेरजंग : स्वातन्न्योत्तर हिन्दी कविता में व्यंग्य, पृ081
6. श्रीवास्तव, जी0पी0 : हास्य रस, पृ0 18
7. कन्हैया लाल नन्दन : श्रेष्ठ व्यंग्य कथाएँ, पृ0 07
8. अमृत रायः नई कहानियाँ, नव0 1969, पृ0 06
9. गोपाल प्रसाद व्यास : साप्ताहिक हिन्दुस्तान –24 मार्च, 1968, पृ0 8
10. डॉ0 मलय : व्यंग्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ0 155
11. घोष, श्यामसुन्दर : व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों, पृ0 55
12. गर्ग, शेरजंग : व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न, पृ0 86